परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति

(इन तीनों में परस्पर समानताएँ एवं असमानताएँ)

लेखक :

स्वामी शान्तानन्द सरस्वती (एम.ए. दर्शनाचार्य)

पूर्व अध्यापक - दर्शन योग महाविद्यालय

आर्यवन, रोजड़

प्रकाशक :

सन्त ओधवराम वैदिक गुरुकुल

भवानीपुर, जि. कच्छ.

दूरभाष : (०२८३१) २८८२५५, ९९९८५ ९४८१०

सन्त ओधवराम वैदिक गुरुकुल

तमसो मा ज्योतिर्गमय

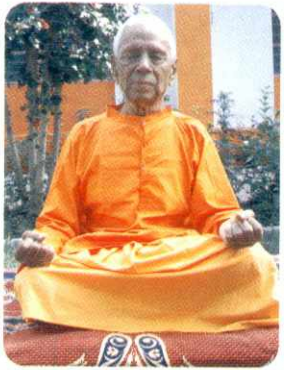

उच्च वैराग्यवान ब्रह्मनिष्ठ योगी

स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक जीवन दर्शन

: जन्म स्थान एवं समय :

ग्राम : फरमाना (महम), रोहतक, हरियाणा, विक्रम संवत् १९८४

: माता-पिता और पूर्वनाम :

माता दाखां, पिता मोलड़, पूर्वनाम मुंशी और मनुदेव

: तीव्र वैराग्य :

भारत विभाजन काल की हिंसक घटनाओं से मृत्यु भय से वैराग्य प्राप्त करना

: संस्थापक :

दर्शन योग महाविद्यालय, विश्व कल्याण धर्मार्थ न्यास, वानप्रस्थ साधक आश्रम

: वैदिक विद्वानों के निर्माता :

लगभग ५० दार्शनिक धार्मिक योगाभ्यासी विद्वानों के निर्माणकर्ता

: संन्यासियों के उत्प्रेरक :

दर्शन योग महाविद्यालय के १३ दार्शनिक विद्वान संन्यासियों के प्रेरणा श्रोत

: वानप्रस्थियों को दीक्षा दाता :

वानप्रस्थ की दीक्षा देकर वानप्रस्थाश्रम पद्धति को गतिमान करना

॥ ओ३म् ॥

परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति

(इन तीनों में परस्पर समानताएँ एवं असमानताएँ)

लेखक

स्वामी शान्तानन्द सरस्वती *(एम. ए., दर्शनाचार्य)*

पूर्व अध्यापक दर्शन योग महाविद्यालय

प्रकाशक

सन्त ओधवराम वैदिक गुरुकुल

भवानीपुर, ता. अबडासा, जि. कच्छ.

दूरभाष : (०२८३१) २८८२५५, (मो.) ९९९८५९४८१०.

पुस्तक : परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति

लेखक : स्वामी शान्तानन्द सरस्वती

संस्करण : प्रथम

लागत मूल्य : ७-०० रूपये

प्रकाशन तिथि : कार्तिक २०६९, नवम्बर, २०१२

सृष्टि संवत : १,९६,०८,५३,११३

मुख्य वितरक : **वैदिक संस्थान**
एफ एफ-५, आदर्श कोम्पलेक्स,
मुरलीधर सोसायटी के सामने, ओढ़व,
अहमदाबाद-३८२४१५

प्राप्तिस्थान

१. **दर्शन योग महाविद्यालय**, आर्यवन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, जि. साबरकांठा, गुजरात-३८३३०७.
दूरभाष : (०२७७०) २८७४१८, २८७५१८, (०२७७४) २७७२१७.

२. **आर्यसमाज मंदिर**, महर्षि दयानन्द मार्ग, रायपुर दरवाजा बाहर, कांकरिया, अहमदाबाद.

३. **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द**, ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६.

४. **आर्ष गुरुकुल महाविद्यालय**, खर्राघाट, नर्मदापुरम्, होशंगाबाद (म.प्र.)

५. **ऋषि उद्यान**, आना सागर, पुष्कर रोड, अजमेर (राजस्थान)

६. **गुरुकुल आश्रम**, आमसेना, जिला नवापारा, (उड़ीसा)

७. **श्री चंद्रेश जी आर्य**, ३१० वार्ड-११बी, साधु वासवाणी सोसा., गोपालपुरी, गांधीधाम (गुज.)

८. **आर्य समाज मन्दिर**, पोरबंदर, राजकोट, भरूच, मोरबी, टंकारा, जूनागढ़, गांधीनगर, आणंद, जामनगर आदि ।

९. **श्री मंगलभानुशाली**, ब्लोक नं. ४, निलकंठदीप, कामालेन, ईरोल रोड, घाटकोपर, मुंबई-८६.

भूमिका

सम्पूर्ण संसार में मूलभूत कुल तीन ही पदार्थ हैं - (१) परमात्मा (२) जीवात्मा (३) प्रकृति। ये तीनों ही पृथक्-पृथक् स्वरूप से अपनी-अपनी सत्ता में स्थित हैं। अर्थात् ये तीनों ही सत्तावान् पदार्थ हैं जिनके स्वरूप का स्पष्ट वर्णन वेदादि सत्य शास्त्रों में किया गया है तथा अनेक तर्क व प्रमाणों से इनकी सत्ता को प्रमाणित किया गया है जैसे (१) "द्यावाभूमी जनयत् देव एकः" (यजु० १६/१८) अर्थात् द्युलोक और पृथ्वी को एक परमात्म देव ने उत्पन्न किया है। (२) "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः (यजु० ४०/१) इस संसार के पदार्थों का त्यागभाव से भोग करो। (३) "तुच्छ्येनाभ्वपिहितं" (ऋ० १०/१२९/३) यह प्रकृति (आभू) पहले अंधकार से ढकी हुई थी। इस प्रकार अनेक स्थलों में वेद मन्त्रों के द्वारा ईश्वर, जीव व प्रकृति की सत्ता सिद्ध की गई है। विदित हो कि परमात्मा, ईश्वर, परमेश्वर, ब्रह्म ये सब समानार्थी हैं। जीवात्मा, आत्मा तथा जीव भी समानार्थी शब्द हैं। इसी तरह प्रकृति, प्रधान, मूल कारण, ये सब भी पर्यायवाची हैं। ये कोई झूठी कल्पना नहीं हैं, अपितु तीनों ही, काल की दृष्टि से अनादि, अनंत हैं।

आज मानव समाज परमात्मा, आत्मा और प्रकृति के विषय् में अनेक प्रकार की ऐसे भ्रांतियों, संशयों एवं मिथ्याज्ञान से ग्रस्त है कि कुछ नास्तिक लोग परमात्मा नामक किसी तत्त्व को स्वीकार ही नहीं करते हैं जो इस संसार का कर्त्ता, धर्त्ता और संहर्ता हो अपितु इस जगत् को अपने आप, स्वतः निर्मित मानते हैं। कुछ व्यक्ति परमात्मा को इस ब्रह्माण्ड का उत्पादक, पालक, विनाशक तो मानते हैं किंतु साथ ही उसे शरीर धारण करने वाला, देहधारी मानते हुए जन्म-मरण के बंधन में आनेवाला भी मानते हैं। अर्थात् वह दुष्टों के विनाश के लिए अवतार (जन्म) लेता और मृत्यु को भी प्राप्त होता है, ऐसा मानते हैं। कुछ लोग मानते हैं कि ईश्वर संसार में नहीं आता है वह स्थान विशेष में रहते हुए ही दुष्टों को दण्ड देता है।

ईश्वर के स्थान के विषय में भी अनेक मत आज संसार में प्रचलित हैं यथा कोई मानता है ईश्वर चौथे आसमान में रहता है, कोई मानता है ईश्वर, सातवें आसमान में रहता है, कोई परमधाम में, तो कोई अक्षरधाम में ईश्वर को मानता है। कोई ईश्वर का निवास स्थान कैलाश पर्वत को मानता है तो कोई बैकुण्ठ को तो कोई क्षीरसागर को। जैसे ईश्वर के निवास स्थान के विषय में लोगों में मत भिन्नता है उसी प्रकार ईश्वर के स्वरूप, नाम, कार्यशैली के विषय में भी अनेक मत-मतान्तर प्रचलित हैं। जैसे ईश्वर पापों को क्षमा करता है, ईश्वर बिना कर्मों के सुख, दुःख देता है, वह जो कुछ चाहे कर सकता है, वही जीवों से सब कुछ करवाता है, ईश्वर में से ही यह संसार बना है, ईश्वर की कोई इच्छा नहीं है, वह आँखों से दिखाई देता है, भविष्य की सारी बातों को जानता है, इस प्रकार अनेक भ्रांतियाँ ईश्वर के विषय में प्रचलित हैं।

जिस प्रकार ईश्वर के विषय में अनेक प्रकार की धारणाएँ लोगों में बनी हुई हैं इसी प्रकार आत्मा के विषय में भी अनेक प्रकार की मान्यताएँ समाज में विद्यमान हैं। अनेक लोग 'आत्मा नामक तत्त्व मनुष्य शरीर में रहती है, इसे स्वीकार ही नहीं करते हैं। कुछ लोग मनुष्य में आत्मा की सत्ता तो स्वीकार कर लेते हैं किंतु पशु, पक्षी, वृक्ष, वनस्पति में आत्मा की सत्ता स्वीकार नहीं करते हैं, अनेक लोग नारी जाति में आधी आत्मा मानते हैं। अनेक लोग आत्मा को परमात्मा का ही अंश मानते हैं। अनेक लोग ऐसा मानते हैं कि अविद्या के द्वारा ब्रह्म को दबा दिये जाने पर ब्रह्म ही आत्मा बन जाता है और फिर जब आत्मा अविद्या को हरा देता है तो वह वापस ब्रह्म बन जाता है। कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि सबकी आत्मा अलग-अलग है अर्थात् मनुष्य मरने के बाद मनुष्य ही बनेगा, तो घोड़ा, घोड़ा ही बनेगा। इस प्रकार गधा, पशु, पक्षी सबकी आत्माएँ अलग-अलग हैं।

इसी प्रकार प्रकृति (जगत्) के विषय में भी अनेक भ्रांतियों या मिथ्याज्ञान से मानव समाज आज ग्रस्त देखा जाता है। यथा 'ब्रह्म

सत्य' 'जगत् मिथ्या' यह नवीन वेदान्तियों का मत हैं कि ब्रह्म ही एकमात्र सत्य वस्तु है, ब्रह्म के अतिरिक्त संसार में कुछ भी नहीं है, सारा संसार स्वप्नवत् है, माया है।

अतः ईश्वर, जीव (आत्मा) और प्रकृति के विषय में यथार्थता क्या है, वास्तविक ज्ञान क्या है यह दर्शाने के लिए सरल, सरस, रोचक, तुलनात्मक शैली में इस लघु पुस्तक की रचना की गई है। जिससे सामान्य स्तर के व्यक्ति भी सरलता व सुगमता से परमात्मा, आत्मा और प्रकृति विषयक यथार्थ जानकारी प्राप्त कर सकें तथा आध्यात्मिक, दार्शनिक ज्ञान-विज्ञान को समझ सकें तथा औरों को समझा सकें।

यद्यपि परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति तीनों ही स्वरूप से पृथक्-पृथक् हैं तथा तीनों में अनेक असमानताएँ हैं। किन्तु इनमें कुछ समानताएँ भी हैं। इस पुस्तक में परमात्मा, जीवात्मा एवं प्रकृति में परस्पर असमानताओं और समानताओं दोनों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस पुस्तक के लेखन, संशोधन एवं प्रकाशन में अनेक विद्वानो, आचार्यों एवं ब्रह्मचारियों का महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। अतः मैं सभी महानुभावों का अत्यन्त आभारी हूँ।

★ ★ ★

परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति में असमानता

परमात्मा	जीवात्मा	प्रकृति
(१) **सर्वरक्षक है :** परमात्मा, जलचर, थलचर, नभचर वृक्ष-वनस्पति आदि समस्त जीवों को विविध प्रकार की शक्ति प्रदान कर तथा सूर्य चन्द्र, जल, वायु, अग्नि आदि पदार्थों को उत्पन्न कर जीव मात्र की रक्षा करता है ।	(१) असर्वरक्षक है - समस्त जीवों की रक्षा करनी तो दूर रही, ईश्वर से शक्ति, सामर्थ्य, ज्ञान-विज्ञान प्राप्त किये बिना स्वयं अपनी रक्षा करने में भी समर्थ नहीं है ।	(१) इसी प्रकार प्रकृति भी सर्वरक्षक नहीं है।
(२) **सर्वव्यापक है :** परमात्मा संसार के कण-कण में आकाश के समान व्यापक है। कोई भी वस्तु या स्थान ईश्वर से खाली नहीं अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि समस्त पदार्थों में तथा प्रत्येक जीवात्माओं के अन्दर हर समय समाया हुआ है। अतः वह सर्व-व्यापक है, इसीलिए उसे विष्णु भी कहते हैं।	(२) एकदेशी है : जीवात्मा एक समय में एक ही स्थान में रह सकता है, एक ही काल में अनेक स्थानों में नहीं रह सकता है ।	(२) प्रकृति भी सर्वव्यापक नहीं है। क्योंकि इस सृष्टि के बाहर ऐसा भी स्थान है जहाँ न प्रकृति है न जीव अपितु केवल ईश्वर ही ईश्वर है ।

(३) **सर्वज्ञ है :** परमात्मा सबसे अधिक जाननेवाला है अर्थात् सम्पूर्ण संसार में विद्यमान् सब प्रकार की विद्याओं को जानने वाला है, संसार का कोई भी ज्ञान-विज्ञान ऐसा नहीं है जिसे परमात्मा न जानता हो, अतः वह समस्त ज्ञानों का ज्ञाता है। इसलिए वेद में सर्वज्ञ ईश्वर को 'कवि' नाम से कहा गया है ।	(३) अल्पज्ञ है : किसी भी जीवात्मा का ज्ञान न तो परमात्मा से अधिक हो सकता है न ही परमात्मा के तुल्य हो सकता है, अपितु जितनी भी विद्या प्राप्त कर ले, ज्ञान-विज्ञान अर्जित कर ले वह सर्वज्ञ कदापि नहीं हो सकता है ।	(३) प्रकृति सर्वथा ज्ञान रहित है।
(४) **सर्वाधार है :** पशु-पक्षी, नर-नारी, वृक्ष-वनस्पति, पृथ्वी, चंद्र आदि समस्त जड़-चेतन पदार्थों का आधार परमात्मा है । यद्यपि इनका आधार सूर्य को कहा जाता है किंतु ईश्वर सूर्य आदि प्रकाशकों का भी प्रकाशक है, आधार है । अतः वह विश्वाधार भी कहलाता है ।	(४) जीवात्मा कदापि सर्वाधार नहीं हो सकता है । न कभी सबका आधार हुआ था और न ही भविष्य में कभी सर्वाधार बन सकता है ।	(४) प्रकृति भी सर्वाधार नहीं है। यह स्वयं ईश्वर के आधार पर टिकी है ।
(५) **सर्वानन्दप्रद है :** परमात्मा समस्त जीवों के लिए उनके अपने-अपने कर्मानुसार सुख	(५) जीवात्मा सर्वानन्दप्रद कभी नहीं हो सकता है। बिना ईश्वर की सहायता के जीवात्मा	(५) प्रकृति भी सर्वानन्दप्रद नहीं है। क्योंकि वह चार दुःखों से युक्त है ।

प्रदान करने की व्यवस्था रखता है अर्थात् सभी जीवों के लिए भोजन, जल, वायु आदि का निर्माण करके उन्हें सुख पहुँचाता है। अतः जीवमात्र को आनन्द प्रदान करने से वह सर्वानन्दप्रद कहलाता है। मुक्ति में भी मुक्तात्माओं को अपना मोक्षानन्द देता है।	में पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि जीव मात्र को आनन्द प्रदान करने का सामर्थ्य ही नहीं है।	
(६) **सर्वेश्वर है :** संसार में जड़-चेतन जितने भी पदार्थ हैं उन सबका स्वामी ईश्वर है तथा सबसे अधिक ऐश्वर्यवान् है। क्योंकि संसार में विद्यमान् स्वर्ण, रजत, हीरा, मोती, धन-सम्पत्ति, प्रजा-पशु, बल, विद्या, बुद्धि, राज्य आदि का ईश्वर ही मूल रूप से एकमात्र मालिक है।	(६) कोई भी जीवात्मा संसार में उपलब्ध समस्त पदार्थों का स्वामी न था, न वर्तमान में है और न ही कभी भविष्य में हो सकता है।	(६) प्रकृति सर्वेश्वर कभी नहीं हो सकती अपितु ईश्वर प्रकृति का स्वामी है।
(७) **सर्व हितैषी है :** ईश्वर इस ब्रह्माण्ड में जितने भी जीव हैं सबका हित चाहता	(७) जीवात्मा सर्वहितैषी नहीं है। अपने स्वार्थ या किसी प्रकार के लोभ, लालच, द्वेष	(७) प्रकृति में जीवों का हित-अहित चाहने की क्षमता नहीं है क्योंकि वह जड़ है।

है, कभी भी किसी जीव का अहित नहीं चाहता । अतः वह सर्वहितैषी है ।	आदि के कारण दूसरों का अनिष्ट चिंतन भी करता है ।	
(८) **सर्वहितकारी है :** परमात्मा सर्वहितैषी ही नहीं सर्व हितकारी भी है अर्थात् सदा सर्वत्र सभी जीवों का कल्याण ही करता है, कभी भी किसी एक जीवात्मा का भी अकल्याण नहीं 'करता है । इसलिए परमात्मा को "शिव" कहते हैं ।	(८) जीवात्मा सर्वकल्याणकारी नहीं है। अपनी अल्पज्ञता, असमर्थता आदि के कारण उस के लिए प्राणीमात्र का कल्याण कर पाना संभव भी नहीं है ।	(८) प्रकृति स्वयं किसी का हित-अहित करने में असमर्थ है क्योंकि वह जड़ है ।
(९) **सर्वद्रष्टा है :** परमात्मा संसार में जितनी भी जड़ -चेतन, चर-अचर वस्तुएँ हैं सबको यथावत् सदा बिना नेत्र के ही अपनी दर्शन-शक्ति से देखने वाला है।	(९) जीवात्मा की दर्शन-शक्ति सीमित है । संसार की सब वस्तुओं को अपने नेत्रों से देखने में वह असमर्थ है ।	(९) प्रकृति में दर्शन-शक्ति नहीं है ।
(१०) **सर्वश्रोता है :** परमात्मा संसारस्थ समस्त जीवों की बोली (वाणी) तथा संसार में होने वाली समस्त ध्वनियों को सुननेवाला है अर्थात् मंद से मंद ध्वनि एवं तीव्र	(१०) जीवात्मा में ऐसी श्रवण-शक्ति नहीं है। वह एक सीमा तक की ध्वनियों को सुन सकता है । उसके बाद नहीं ।	(१०) प्रकृति में श्रवण-शक्ति नहीं है। अर्थात् प्रकृति में किसी भी प्रकार की ध्वनि को सुनने की क्षमता नहीं है ।

से तीव्र ध्वनि को बिना कान के ही अपनी श्रवण-शक्ति से आसानी से सुननेवाला है।		
(११) **सर्वशक्तिमान है :** परमात्मा अपने समस्त कर्मों को बिना किसी की सहायता के स्वयं दक्षतापूर्वक सम्पादित करने वाला है, अर्थात् वह सबसे अधिक बलवान् है।	(११) जीवात्मा अल्पशक्तिमान है, ईश्वर एवं प्रकृति की सहायता के बिना एक तिनका भी नहीं उठा सकता है।	(११) प्रकृति को परमात्मा जब तक कार्यरूप नहीं कर देता है तब तक वह शक्ति रहित रहती है।
(१२) **सृष्टिकर्त्ता है :** सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि समस्त लोक-लोकान्तरों की रचना करने वाला परमात्मा ही है। तथा बिना हाथ-पाँव के अपने ज्ञानमय सामर्थ्य से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना करता है। इसीलिए ईश्वर को "विश्वकर्मा" कहा जाता है।	(१२) जीवात्मा में सृष्टि रचना करने की क्षमता नहीं है। संसार के सभी जीव मिलकर भी सृष्टि की रचना नहीं कर सकते हैं और मुक्तात्माओं में भी यह क्षमता नहीं है।	(१२) प्रकृति, प्रलयावस्था से सृष्टि निर्माण की अवस्था में स्वयं परिवर्तित नहीं हो सकती।
(१३) **सर्व संचालनकर्त्ता :** परमात्मा समस्त संसार का संचालन करने वाला और	(१३) संसारसंचालन में आत्मा कदापि समर्थ नहीं हो सकता है।	(१३) प्रकृति बिना ईश्वर की सहायता के स्वयं संचालित नहीं होती है।

संसार के समस्त जीवों का पालन करने वाला है ।		
(१४) **संहारकर्त्ता है :** परमात्मा समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड का विनाश करने वाला है अर्थात् सृष्टि का प्रलय करने वाला है ।	(१४) जीवात्मा में समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड को विनष्ट करने, प्रलय करने की शक्ति नहीं है ।	(१४) ईश्वर की सहायता के बिना सृष्टि प्रलय अवस्था को भी प्राप्त नहीं होती ।
(१५) **सर्वान्तर्यामी है :** परमात्मा सबके अन्दर की बातों को भी जानने वाला है तथा सबके अंदर विराजमान होकर सबका नियमन करने वाला है ।	(१५) जीवात्मा सबके अंदर की बातों को जानने में समर्थ नहीं है और सब जीवों का नियमन भी नहीं कर सकता है ।	(१५) प्रकृति में न तो जीवों के अंदर की बात जानने की क्षमता है न बाहर की तथा वह इनका नियमन भी नहीं कर सकती।
(१६) **सुखस्वरूप है :** परमात्मा अंदर बाहर सब ओर से आनन्द से ओत-प्रोत है, सुखमय है, सुख का सागर है। अर्थात् अनन्त आनन्द का भंडार है। ईश्वर को किसी दूसरे से आनन्द प्राप्त करने की आवश्यकता ही नहीं है, वह स्वयं अपने आनन्द से सर्वदा तृप्त रहता है ।	(१६) जीवात्मा सुख-स्वरूप नहीं है। अर्थात् आत्मा स्वयं सुख से रहित है । यह प्रकृति से सुख प्राप्त करके कुछ समय के लिए सुख की अनुभूति करता है अथवा ईश्वर से सुख प्राप्त करके सुखी होता है ।	(१६) प्रकृति में सुख भी है और दुःख भी है ।

(१७) **सर्वगुण सम्पन्न है :** संसार में जितने भी गुण हैं उन सबसे ईश्वर सम्पन्न है। कोई ऐसा सद्‌गुण नहीं है जो परमात्मा में न हो अर्थात् ईश्वर सब प्रकार के सत्य गुणों से सुशोभित है ।	(१७) आत्मा सर्वगुण सम्पन्न कभी नहीं हो सकता है । वेद, दर्शन आदि शास्त्रों को पढ़कर दयावान्, बुद्धिमान्, गुणवान् तो हो सकता है किंतु सर्वगुण-सम्पन्न नहीं ।	(१७) प्रकृति में ये गुण नहीं हैं ।
(१८) **स्तुत्य है :** परमात्मा मनुष्य मात्र के लिए स्तुति, उपासना करने के योग्य है, प्रशंसा करने के योग्य है, सबके द्वारा प्रशंसनीय है ।	(१८) जीवात्मा सबके लिए सदा स्तुत्य नहीं है और सबके द्वारा प्रशंसनीय भी नहीं होता है ।	(१८) ईश्वर के समान प्रकृति जीवन चलाने के लिए उपयोग करने योग्य है ।
(१९) **सर्वश्रेष्ठ है :** समस्त विश्व में जितने भी जीव-जन्तु हैं, उत्तम-उत्तम पदार्थ हैं उन सभी से श्रेष्ठ परमात्मा है । उससे श्रेष्ठ वस्तु इस संसार में कुछ भी नहीं है, कोई भी नहीं है ।	(१९) जीवात्मा सर्वश्रेष्ठ कदापि नहीं हो सकता है । यह जितने भी श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त कर ले किन्तु ईश्वर से श्रेष्ठ कभी नहीं हो सकता है ।	(१९) प्रकृति भी ईश्वर से निकृष्ट होने से सर्वश्रेष्ठ नहीं है ।
(२०) **सर्वमान्य है :** ईश्वर सब मनुष्यों के लिए मान्य है अर्थात् मनुष्य मात्र के लिए सदैव सम्मान करने के योग्य है ।	(२०) कोई भी जीवात्मा सर्वदा सर्वमान्य नहीं हो सकता है। कभी अच्छे कार्य करने पर स्वयं को सम्मानित अनुभव करता	(२०) प्रकृति स्वयं मान-अपमान से रहित है।

	है तो बुरा काम करने पर अपमानित भी अनुभव करता है ।	
(२१) **सबका माता-पिता है :** इस संसार में जितने भी जीव जन्तु हैं सभी का माता-पिता ईश्वर है = सबका उत्पादक, पालक एवं रक्षक है ।	(२१) जीवात्मा समस्त जीवों का माता-पिता न तो है, न था, न भविष्य में कभी हो सकता है ।	(२१) प्रकृति समस्त सांसारिक पदार्थों का उपादान-कारण होते हुए भी ईश्वर की तरह सब जीवों का माता-पिता नहीं है ।
(२२) **सबका राजा है :** समस्त (ब्रह्माण्ड) में जितने भी देश-देशान्तर (साम्राज्य) हैं उन सबका राजा परमात्मा है अर्थात् ईश्वर का नियम, कानून, संविधान संसार के समस्त देशों में लागू होता है ।	(२२) कोई भी जीवात्मा समस्त ब्रह्माण्ड का राजा कभी नहीं हो सकता है, न भूतकाल में कभी हुआ था और न होगा। जीवात्मा तो परमात्मा की प्रजा है ।	(२२) प्रकृति = समस्त ब्रह्माण्ड ईश्वर का साम्राज्य है ।
(२३) **सबका गुरु है :** परमात्मा संसारस्थ प्राणी मात्र को अपने जीवन निर्वाह करने के लिए ज्ञान देने वाला है तथा जितने भी देहधारी मनुष्य हैं उन सबके गुरुओं का भी परम- गुरु है ।	(२३) जीवात्मा प्राणी मात्र का गुरु कभी नहीं हो सकता है ।	(२३) प्रकृति ज्ञान रहित होने से स्वयं दूसरों को उपदेश करने अथवा गुरु बनने में समर्थ नहीं है ।

(२४) **सर्वथा स्वतंत्र है :** परमात्मा कभी किसी के आधीन नहीं होता है अर्थात् पूर्ण स्वतंत्रता के साथ अपने समस्त कर्मों को करता है ।	(२४) जीवात्मा कर्म करने में स्वतंत्र परन्तु फल भोगने में ईश्वर के आधीन है ।	(२४) प्रकृति भी परमात्मा के आधीन है ।
(२५) **सदा-सर्वदा जागरित है :** सृष्टिकाल हो अथवा प्रलयकाल हो, दिन हो या रात हो परमात्मा सदा जागते रहता है। कभी भी एक क्षण के लिए शयन नहीं करता है न ही कभी आलस्य प्रमाद करता है ।	(२५)जीवात्मा सदा जागरित नहीं रहता है अर्थात् कभी सोता है तो कभी जागता है । प्रलयकाल में प्रत्येक बद्ध आत्मा मूर्छित रहता है व सृष्टि काल में पुनः जागरित होता है। यह दिन में जागने व रात्रि में सोने के नियम से चलनेवाला होता है ।	(२५) प्रकृति जड़ होने से कभी भी जागरित अवस्था में नहीं रहती है, सदा अजाग्रत अवस्था में ही रहती है ।
(२६) **शांतिमय है :** परमात्मा सदा सर्वदा शांत रहता है, कभी अशांत नहीं होता है और स्वयं शांति का धाम होते हुए अपने उपासकों को भी शांति प्रदान करता है।	(२६) जीवात्मा सदा सर्वदा शांत नहीं रहता है। अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं के आने पर प्रायः अशांत, खिन्न हो जाता है ।	(२६) शांत-अशांत दोनों होती है । किंतु जड़ होने से जीव के समान कभी खिन्न नहीं हो सकती ।
(२७) **सबका मित्र है :** परमात्मा संसार में जितने भी जीव हैं उन सबका मित्र है । किसी	(२७) जीवात्मा संसार में किसी से मित्रता रखता है तो किसी से शत्रुता भी रखता है	

से भी ईश्वर की शत्रुता नहीं है। न ही वह किसी को भी अपना शत्रु समझता है। ईश्वर तो सदा सभी को मित्र की दृष्टि से देखता है। इसलिए उसे "विश्वामित्र" कहा जाता है।	अथवा जो उसका हित करता है उसे अपना मित्र समझता है तथा जो हानि करता है उसे शत्रु समझता है।	(२७) प्रकृति मित्रता, शत्रुता आदि चैतन्य गुणों से रहित है।
(२८) **सच्चा मित्र है :** एकमात्र ईश्वर ही प्राणी मात्र का सच्चा मित्र है। कभी भी किसी के साथ दुष्टता-शत्रुता का व्यवहार नहीं करता है तथा कभी-किसी से धोखा नहीं करता है। अपनी मित्रता कभी किसी से तोड़ता नहीं है।	(२८) जीवात्मा अपने मित्र से भी कभी-कभी दुष्टता, शत्रुता का व्यवहार कर देता है, धोखा भी दे देता है अथवा अवसर आने पर अपने मित्र से भी मित्रता तोड़ देता है।	(२८) प्रकृति जड़ होने से स्वयं न किसी से मित्रता करती है, न किसी से मित्रता तोड़ती है।
(२९) **शोक रहित है :** परमात्मा तीनों कालों में किसी भी परिस्थिति में शोकग्रस्त नहीं होता है। सदा प्रसन्न रहता है। इसलिए परमात्मा का नाम अशोक भी है।	(२९) विपरीत परिस्थिति के आने पर प्रायः शोकग्रस्त भी हो जाता है।	(२९) प्रकृति जड़ होने से कभी शोकग्रस्त नहीं होती है।

(३०) **रोग रहित है :** परमात्मा सदा सभी प्रकार के रोगों से रहित है । अर्थात् शारीरिक, मानसिक किसी भी प्रकार का रोग ईश्वर को स्पर्श भी नहीं करता है क्योंकि वह शरीर-मन रहित है । अतः वह निरामय कहलाता है ।	(३०) जीवात्मा संसार में अनेक प्रकार के शारीरिक-मानसिक रोगों से पीड़ित रहता है तथा शरीर में रहते हुए सर्वथा रोग रहित नहीं हो सकता है ।	(३०) शरीर रहित होने से प्रकृत्ति में जीव के समान रोग संभव नहीं है ।
(३१) **वियोग रहित है :** परमात्मा का कभी किसी से वियोग नहीं होता है अर्थात् कभी भी किसी जीव से अलग नहीं होता है । सदा सबके साथ रहता है । यहाँ तक कि प्रकृति भी कभी ईश्वर से दूर नहीं जा सकती है क्योंकि जहाँ कहीं भी प्रकृति होगी वहाँ परमात्मा पहले से ही विद्यमान रहता है ।	(३१) जीवात्मा सदा सबके साथ नहीं रहता है । एक जीवात्मा का अपने से भिन्न दूसरे जीवात्माओं से मिलना बिछुड़ना होता रहता है ।	(३१) प्रकृति से जीवों का संयोग वियोग होता रहता है अर्थात् बंधन की अवस्था में जीव प्रकृति से जुड़े रहते हैं मुक्त होने पर प्रकृति के बंधन से छूट जाते हैं ।
(३२) **सर्वथा शुद्ध है :** परमात्मा ज्ञान की दृष्टि से, कर्म की दृष्टि से, स्वरूप की दृष्टि से सर्वथा शुद्ध है । आंतरिक व बाह्य	(३२) जीवात्मा स्वरूप से शुद्ध है किंतु ज्ञान की दृष्टि से, कर्म की दृष्टि से सदैव शुद्ध नहीं रह पाता है ।	(३२) प्रकृति के संसार में परिवर्तित होते ही इसमें अनेक प्रकार की अशुद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ।

किसी भी प्रकार की मलिनता-अपवित्रता ईश्वर में नहीं है। इसीलिए वेद में ईश्वर को 'शुद्ध' कहा गया है।		
(३३) **सम्पूर्ण है :** ईश्वर में किसी भी प्रकार की न्यूनता, कमी नहीं है। ज्ञान की दृष्टि से, बल की दृष्टि से, आनन्द की दृष्टि से, ऐश्वर्य की दृष्टि से सर्वदा सम्पूर्ण है तथा स्थान की दृष्टि से भी सर्वत्र परिपूर्ण है।	(३३) जीवात्मा ज्ञान, बल, सामर्थ्य आदि के दृष्टि से अपूर्ण है तथा अनेक प्रकार की कमियों, न्यूनताओं से युक्त है।	(३३) प्रकृति में भी ईश्वर के समान परिपूर्णता नहीं है।
(३४) **निर्लिप्त है :** परमात्मा सांसारिक सुख-दुःख, राग-द्वेष, छल-कपट आदि दोषों से सर्वथा-सर्वदा निर्लिप्त रहता है।	(३४) जीवात्मा सांसारिक सुख-दुःख की अनुभूति, राग-द्वेष, छल-कपट से प्रायः युक्त रहता है।	(३४) प्रकृति जड़ होने के कारण जीव के समान सुख-दुःख की अनुभूति करने में असमर्थ है। अतः उसमें राग-द्वेष, छल-कपट भी नहीं होते।
(३५) **निष्काम है :** परमात्मा सांसारिक कामनाओं से सर्वथा रहित है। मैंने सृष्टि बनायी है, जीवों का उपकार किया है अतः बदले में जीवात्माएँ मेरी प्रशंसा करें,	(३५) जीवात्मा सकाम भावना, सकाम कर्म भी करता है और निष्काम कर्म, निष्काम भावना भी करता है। अर्थात् जब सांसारिक राग-द्वेष आदि अविद्या से युक्त रहता	(३५) प्रकृति ज्ञान पूर्वक कर्म करने में असमर्थ है।

उपासना करें, ऐसी सकाम भावना से ईश्वर सर्वथा रहित है तथा सदैव निष्काम कर्म ही करता है। इसीलिये वेद में ईश्वर को "अकामः" कहा गया है।	है तब सकाम कर्म करता है और विवेक, वैराग्य, तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लेने पर निष्काम कर्म करने लगता है।	
(३६) **निर्भय है :** परमात्मा कभी भी किसी से भयभीत नहीं होता है। तीनों कालों में सर्वथा निर्भय ही रहता है।	(३६) जीवात्मा सदैव निर्भय् होकर नहीं रहता है जैसे निर्बल व्यक्ति बलवान् से, निर्धन व्यक्ति धनवान् से, मूर्ख व्यक्ति विद्वान् से डरता है।	(३६) प्रकृति में जीव के समान कोई डर-भय नहीं होता क्योंकि यह जड़ है।
(३७) **निश्चित है :** परमात्मा कभी भी किसी भी प्रकार की चिंता नहीं करता है।	(३७) जीवात्मा अनेक प्रकार की चिंता भी करता रहता है।	(३७) प्रकृति जड़ होने से चिंता नहीं करती है।
(३८) **न्यायकारी है :** परमात्मा सदा सबके साथ न्याय ही करता है। कभी किसी के साथ अन्याय, पक्षपातयुक्त व्यवहार नहीं करता है। अर्थात् जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा ही फल देता है।	(३८) जीवात्मा पूर्ण न्यायकारी नहीं है। अपने स्वार्थ, लोभ, हठ, दुराग्रह, अविद्या, अल्पज्ञता आदि कारणों से अन्याय भी कर देता है।	(३८) प्रकृति में अपने आप किसी के प्रति न्याय-अन्यायपूर्वक व्यवहार करने का सामर्थ्य नहीं है।

जो जितना कर्म करता है उसे उतना ही फल देता है, कम अधिक नहीं करता है।		
(३९) **निष्पाप है :** परमात्मा कभी भी पाप, अधर्म युक्त कर्म नहीं करता है, सर्वथा निर्दोष, निष्कलंक, निष्पाप है ।	(३९) जीवात्मा अपनी न्यूनता, अविद्यादि कारणों से पाप कर्म भी करता है ।	(३९) प्रकृति पाप-पुण्य से रहित है।
(४०) **निर्विघ्न है :** परमात्मा किसी भी प्रकार की आंतरिक व बाह्य विघ्न-बाधाओं से बाधित नहीं होता है ।	(४०) जीवात्मा अनेक प्रकार की आंतरिक व बाह्य विघ्न बाधाओं से बाधित होता रहता है ।	(४०) प्रकृति की स्वाभाविक क्रिया गति में जीवात्मा विघ्न उत्पन्न करता रहता है।
(४१) **निर्द्वन्द्व है :** परमात्मा सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, हानि-लाभ, मान-अपमान, आदि द्वन्द्वों से कभी ग्रस्त नहीं होता है ।	(४१) जीवात्मा सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, हानि-लाभ, मान-अपमान आदि अनेक प्रकार के द्वन्द्वों से ग्रस्त रहता है ।	(४१) प्रकृति, जीवात्मा की तरह भूख-प्यास, मान-अपमान आदि से रहित है ।
(४२) **निर्लोभ है :** परमात्मा कभी भी लोभ-लालच से युक्त नहीं होता है अपितु स्वयं निर्लोभ होते हुए अपने उपासकों को भी निर्लोभी बनाता है ।	(४२) जीवात्मा अनेक प्रकार के लोभ-लालच से संयुक्त होता रहता है ।	(४२) प्रकृति में जीवों के समान लोभ-लालच नहीं होता है ।

(४३) **अशरीरी है :** परमात्मा कभी भी शरीर धारण नहीं करता है। अर्थात् किसी माता के गर्भ से जन्म नहीं लेता है। ईश्वर का न स्थूल शरीर है, न सूक्ष्म शरीर है, न कारण शरीर है। इन तीनों शरीरों से परमात्मा रहित है। इसीलिए वेद में परमात्मा को 'अकाय' कहा गया है।	(४३) जीवात्मा शरीर धारण करता है अर्थात् अपने कर्मानुसार मनुष्य, पशु, पक्षी आदि भिन्न-भिन्न शरीरों को धारण करता रहता है जब तक कि मोक्ष प्राप्त न कर ले।	(४३) मनुष्य आदि जीवों के समान प्रकृति का कोई शरीर नहीं होता अपितु प्रकृति से शरीरों का निर्माण होता है।
(४४) **अनुपम है :** ईश्वर की उपमा के योग्य कोई भी वस्तु इस ब्रह्माण्ड में नहीं है क्योंकि उसके समान या उससे उत्तम कोई पदार्थ संसार में नहीं है। ईश्वर के लिये जितनी जो उपमाएँ हैं वे सारी हीन उपमाएँ हैं।	(४४) जीवात्मा अनुपम नहीं है क्योंकि इनसे भी श्रेष्ठ गुण, कर्म, स्वभाववाला परमात्मा संसार में विद्यमान् है।	(४४) प्रकृति भी अनुपम नहीं है।
(४५) **अपराजित है :** परमात्मा कभी भी किसी से पराजय को प्राप्त नहीं होता है। ज्ञान, धन, बल, बुद्धि, सामर्थ्य सब प्रकार से सर्वदा अपराजित है।	(४५) जीवात्मा अपने से बलवान्, बुद्धिमान्, ज्ञानवान्, सामर्थ्य-वान् से पराजय को प्राप्त होता है।	(४५) प्रकृति में इस प्रकार जय, पराजय नहीं होती है।

(४६) **अस्नाविरं है :** परमात्मा नस-नाड़ी के बंधन में कभी नहीं आता है। इसलिए वेद में परमात्मा को "अस्नाविरं" कहा गया है।	(४६) जीवात्मा सकाम कर्मों के करने पर नस-नाड़ी के बंधन में आता है।	(४६) प्रकृति कभी नस-नाड़ी के बंधन में नहीं आती है। किंतु प्रकृति से नस-नाड़ियों का निर्माण होता है।
(४७) **मनीषी है :** परमात्मा समस्त जीवों के मन का स्वामी है तथा सबके मन को शक्ति देनेवाला है और सबकी मानसिक क्रियाओं को भी जाननेवाला है।	(४७) जीवात्मा न तो सबके मन का स्वामी है न सबकी मानसिक क्रियाओं को जानने वाला है।	(४७) प्रकृति तीनों कालों में किसी के भी मन की बातों को जानने में समर्थ नहीं है।
(४८) **पूर्ण धैर्यवान् है :** परमात्मा हर स्थिति में धैर्य को धारण किये रहता है उस पर कोई भी कितना ही मिथ्या आरोप लगाये कभी विचलित, अधीर नहीं होता है। कभी अपने धैर्य को छोड़ता नहीं है। अतः वेदमंत्र में ईश्वर को 'धीरः' कहकर पुकारा गया है।	(४८) पूर्ण धैर्यवान् नहीं है। अनेक बार आरोप लगाये जाने पर या अपमानित किये जाने पर दुःख, कष्ट, रोग के बढ़ जाने पर अधीर, विचलित हो उठता है। धैर्य खो बैठता है।	(४८) प्रकृति में जीवों के समान अधैर्य की स्थिति नहीं होती है।
(४९) **अद्वितीय है :** एक ही है, अर्थात् परमात्मा के समान या उससे बड़ा कोई दूसरा ईश्वर	(४९) जीवात्मा एक ही नहीं है अपितु जीवात्माएँ अनेक हैं।	(४९) इसी प्रकार प्रकृति समुदाय रूप में एक है। किन्तु इसके अनेक कण हैं।

(परमात्मा) नहीं है। अनेक ईश्वर नहीं हैं। अपितु ईश्वर नामक वस्तु एक ही होते हुए भी अनेक नामों वाला है ।		
(५०) **सबका सहायक :** एक ईश्वर, हर समय जलचर, थलचर, नभचर आदि जीवमात्र की सहायता करता है व इस कार्य में पूर्ण समर्थ है । परमात्मा की सहायता प्राप्त करके ही शरीरधारी जीव खाना-पीना, गति करना आदि क्रियाएँ करता है इसलिए वह सबका सहायक कहलाता है ।	(५०) जीवात्मा हर समय सबकी सहायता करने में समर्थ नहीं है। वह तो ईश्वर से शक्ति सामर्थ्य प्राप्त किये बिना एक पल के लिए भी किसी जीव की सहायता नहीं कर सकता है ।	(५०) प्रकृति स्वयं किसी की सहायता, असहायता करने में असमर्थ है ।
(५१) **सर्वथा दुःखरहित है :** भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालों में ईश्वर को दुःख का स्पर्श भी नहीं होता है । वह आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक आदि सभी प्रकार के आंतरिक एवं बाह्य दुःखों से सर्वथा रहित है । अतः जो	(५१) जीवात्मा आध्यात्मिक = स्वयं की त्रुटि-दोष से होने वाले, आधि, दैविक = बाढ़, भूकंप, अकाल आदि प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले, आधिभौतिक = अन्य जीव जंतुओं से होने वाले दुःखों से ग्रस्त होता रहता है ।	(५१) प्रकृति जड़ होने से दुःख की अनुभूति से रहित है ।

जरा, मृत्यु, रोग, वियोग आदि के द्वारा दुःखी होता है वैसा ईश्वर नहीं हो सकता है ।		
(५२) **परम दयालु है :** परमात्मा जीव मात्र पर दया करनेवाला है। कभी भी किसी भी प्राणी के प्रति हिंसापूर्वक, क्रूरता-पूर्वक व्यवहार नहीं करता है।	(५२) जीवात्मा किसी के प्रति दया का व्यवहार करता है तो किसी के प्रति क्रूरता, हिंसा, निर्दयता आदि का व्यवहार भी करता है ।	(५२) प्रकृति में जीवों की तरह दया, हिंसा, क्रूरता आदि की भावनाएँ नहीं होती हैं।
(५३) **परम श्रद्धेय है :** परमात्मा मनुष्य मात्र के लिए श्रद्धा करने के योग्य है अर्थात् स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, अमीर-गरीब सबके लिए समान रूप से श्रद्धा का पात्र है ।	(५३) कोई भी जीवात्मा सभी मनुष्यों के लिए श्रद्धा का पात्र नहीं होता है। कुछ मनुष्यों के लिए श्रद्धेय भले ही हो जाए।	(५३) प्रकृति ईश्वर की तरह श्रद्धेय नहीं हो सकती है ।
(५४) **परम प्रिय है :** परमात्मा समस्त मनुष्यों के द्वारा प्रेम करने के योग्य है। जितना प्रिय ईश्वर हो सकता है उतना प्रिय अन्य कोई भी नहीं हो सकता है। अतः ईश्वर सबका प्रियतम है ।	(५४) सभी-जीवात्मा सबके लिए प्रिय नहीं होते हैं कोई किसी का प्रिय होता है तो कोई किसी के लिए अप्रिय भी होता है ।	(५४) प्रकृति में भी परम प्रिय होने का सामर्थ्य नहीं है ।

(५५) **परम पूज्य है :** ईश्वर ही संसार में सबसे अधिक पूजनीय है तथा सभी वर्ण, समुदाय के मनुष्यों के लिए पूज्य है, प्रार्थनीय है ।	(५५) कोई भी जीवात्मा सभी मनुष्यों के लिए पूज्य नहीं होता है। किसी व्यक्ति के लिए एक जीवात्मा पूज्य होता है तो वही जीवात्मा अन्य किसी व्यक्ति के लिए अपूज्य भी बन सकता है ।	(५५) प्रकृति कभी भी पूजा करने के योग्य नहीं है ।
(५६) **पापनाशक है :** परमात्मा पतितपावन है । जो ईश्वर की उपासना करता है, उसकी आज्ञा का पालन करता है, उसके पापों का नाश करने वाला = उसको भावी पापों से बचाने वाला है । पतित से पतित व्यक्ति भी ईश्वर की शरण में जाता है तो ईश्वर उसे पवित्र करता है व पुण्यात्मा बना देता है ।	(५६) जीवात्मा पूरी तरह पापों से बचाने में समर्थ नहीं है, वह चाहते हुए भी किसी को पूर्णतः पाप कर्मों से मुक्त नहीं कर पाता है, पूर्ण पुण्यात्मा नहीं बना पाता है।	(५६) प्रकृति में इस प्रकार जीवों को पापकर्मों से बचाने की क्षमता नहीं है ।
(५७) **पुरुहूत है :** परमात्मा प्राचीन ऋषि, मुनियों, विद्वानों से लेकर आज तक के सभी विद्वानों, भक्तों के द्वारा भक्ति भाव से	(५७) कोई भी जीवात्मा सभी विद्वानों, मनुष्यों के द्वारा भक्ति भाव से पुकारा नहीं जाता है।	(५७) प्रकृति में जीवों की पुकार को सुनने का सामर्थ्य नहीं है ।

पुकारा जानेवाला है। वह अपने भक्तों की पुकार को हर समय सुननेवाला है।		
(५८) **प्राणप्रदाता है :** सभी जीवों को प्राण देनेवाला है, सबके प्राणों का आधार है अर्थात् प्राणों का भी प्राण है, तथा सबके प्राणों का रक्षक है ।	(५८) कोई भी जीवात्मा सबके प्राणों का आधार नहीं हो सकता है, न ही वह सबका प्राणप्रदाता है ।	(५८) प्रकृति स्वयं अपनी ओर से किसी के प्राण बचाने में असमर्थ है क्योंकि यह स्वयं प्राण = चेतना से रहित है।
(५९) **सर्वप्रसिद्ध है :** ईश्वर सबसे अधिक प्रसिद्ध है तथा समस्त संसार में प्रसिद्ध है । ईश्वर के समान प्रसिद्धि संसार में किसी की भी नहीं है ।	(५९) कोई भी जीवात्मा सर्वत्र प्रसिद्ध नहीं होता है तथा कोई भी जीवात्मा तीनों कालों में ईश्वर के समान प्रसिद्ध नहीं हो सकता है ।	(५९) प्रकृति भी ईश्वर के समान प्रसिद्ध नहीं है ।
(६०) **हरि है :** परमात्मा सबके दु:खों, कष्टों, रोगों, चिन्ताओं विघ्न, बाधाओं को हरनेवाला है । अत: वेदों में परमात्मा को "हरि" नाम से संबोधित किया गया है ।	(६०) सबके दु:ख-कष्टों विघ्न-बाधाओं को हरने में समर्थ नहीं है ।	(६०) प्रकृति भी सबके दु:ख-कष्टों को हरने में समर्थ नहीं है।
(६१) **वैश्वानर है :** ईश्वर समस्त विश्व का नेता है, नायक है, सम्पूर्ण विश्व के जड़ -	(६१) कोई भी जीवात्मा सम्पूर्ण विश्व के समस्त जड़-चेतन पदार्थों को गति देते हुए आगे	(६१) प्रकृति स्वयं अपनी इच्छा से गति करने में असमर्थ है ।

चेतन पदार्थों को गति प्रदान करते हुए आगे बढ़ाने वाला है ।	बढ़ाने में समर्थ नहीं है ।	
(६२) **वेद-ज्ञान प्रदानकर्त्ता है :** परमात्मा सृष्टि के आदि में चार ऋषि अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा के हृदय में वेद ज्ञान का प्रकाश करने वाला है अर्थात् वेदज्ञान प्रदाता ईश्वर ही है ।	(६२) किसी भी जीवात्मा में वेद की रचना करने की क्षमता नहीं है अर्थात् कोई ऋषि, महर्षि या ब्रह्मा आदि वेद के रचयिता नहीं हैं ।	(६२) प्रकृति में वेद को उत्पन्न करने का सामर्थ्य कभी नहीं हो सकता है ।
(६३) **अविद्या से रहित है :** परमात्मा तीनों कालों में कभी भी अविद्या से ग्रस्त नहीं होता है और अविद्या से ग्रस्त होकर कभी जीव नहीं बनता है ।	(६३) जीवात्मा अविद्या से ग्रस्त हो जाता है और इसी विद्या के कारण फिर शरीर धारण करता है व शरीरधारी कहलाता है ।	(६३) प्रकृति भी स्वयं अपने आप में अविद्या से रहित है ।
(६४) **अदिति है :** परमात्मा कभी अपने व्रत, नियम, कर्त्तव्य कर्म से, तथा सत्य, न्याय धर्म के पथ से कभी च्युत, पतित, खंडित नहीं होता है। इसलिए वेद में ईश्वर को 'अदिति' के नाम से वर्णित किया गया है।	(६४) जीवात्मा अपने व्रत, नियम, कर्त्तव्य से तथा सत्य, धर्म, न्याय के पथ से पतित-खंडित होता रहता है ।	(६४) प्रकृति ईश्वर के द्वारा बनाये गये नियमों का उल्लंघन करने, तोड़ने में समर्थ नहीं है ।

★ ★ ★

परमात्मा एवं जीवात्मा में सम्बन्ध

(१) परमात्मा सभी जीवात्माओं का माता-पिता है।	(१) सभी जीवात्माएँ परमात्मा की सन्तान हैं ।
(२) परमात्मा सभी जीवात्माओं का स्वामी है ।	(२) सभी जीवात्माएँ परमात्मा के सेवक हैं ।
(३) परमात्मा सभी जीवात्माओं का गुरु है ।	(३) सभी जीवात्माएँ परमात्मा के शिष्य हैं ।
(४) परमात्मा सभी जीवात्माओं का राजा है ।	(४) सभी जीवात्माएँ परमात्मा की प्रजा हैं ।
(५) परमात्मा सभी जीवात्माओं का उपास्य है ।	(५) सभी जीवात्माएँ परमात्मा की उपासक हैं ।
(६) परमात्मा सभी जीवात्माओं के अंदर बाहर सर्वत्र व्यापक है ।	(६) सभी जीवात्माएँ परमात्मा के अंदर व्याप्य हैं।
(७) परमात्मा सभी जीवात्माओं का आधार है ।	(७) सभी जीवात्माएँ परमात्मा की आधेय = परमात्मा के आधार पर ही रहनेवाली हैं ।
(८) परमात्मा सभी जीवात्माओं का साध्य = प्राप्तव्य है ।	(८) सभी जीवात्माएँ परमात्मा के साधक हैं ।
(९) परमात्मा सभी जीवों का न्यायाधीश है ।	(९) सभी जीवात्माएँ परमात्मा से न्याय प्राप्त करती हैं ।
(१०) परमात्मा जीवात्माओं के लिए शरीर-मन-बुद्धि का प्रदाता है।	(१०) जीवात्माएँ ईश्वर से प्राप्त शरीर-मन-बुद्धि आदि का प्रयोग करने वाली हैं ।
(११) परमात्मा जन्म प्रदाता है ।	(११) जीवात्मा जन्मगृहिता है ।

(१२) परमात्मा वरणीय है ।	(१२) जीवात्मा वरणकर्ता है ।
(१३) परमात्मा यजनीय है ।	(१३) जीवात्मा याजक है ।
(१४) परमात्मा शरण है ।	(१४) जीवात्मा शरणागत है ।
(१५) परमात्मा लक्ष्य है ।	(१५) जीवात्मा पथिक है ।
(१६) परमात्मा स्तुत्य है ।	(१६) जीवात्मा स्तोता है ।
(१७) परमात्मा देव (पूज्य) है ।	(१७) जीवात्मा पूजारी है ।
(१८) परमात्मा भगवान् है ।	(१८) जीवात्मा भक्त है ।
(१९) परमात्मा सुख-शांतिप्रदाता है ।	(१९) जीवात्मा सुख-शांति प्राप्त करनेवाला है ।
(२०) परमात्मा दण्ड प्रदाता है ।	(२०) जीवात्मा दण्डित है ।
(२१) परमात्मा पुरस्कार प्रदाता है ।	(२१) जीवात्मा पुरस्कृत है ।
(२२) परमात्मा नियंत्रक है ।	(२२) जीवात्मा नियन्त्रित है ।
(२३) परमात्मा आनन्द-मुक्तिप्रदाता है ।	(२३) जीवात्मा मुक्ति गृहिता है ।
(२४) परमात्मा प्रेरक है ।	(२४) जीवात्मा प्रेरित है ।
(२५) परमात्मा भोगप्रदाता है ।	(२५) जीवात्मा भोग-भोक्ता है ।

(२६) परमात्मा प्रार्थित है ।

(२७) परमात्मा रक्षक है ।

(२८) परमात्मा उपकारक है ।

(२९) परमात्मा अनुग्रहकर्ता है ।

(३०) परमात्मा पुरोहित है ।

(३१) परमात्मा ध्येय है ।

(३२) परमात्मा ज्ञेय है ।

(३३) परमात्मा मन्तव्य है ।

(३४) परमात्मा निदिध्यासितव्य है ।

(३५) परमात्मा कमनीय है ।

(३६) परमात्मा जनक है ।

(३७) परमात्मा तारक है ।

(२६) जीवात्मा प्रार्थयिता है ।

(२७) जीवात्मा रक्षित है ।

(२८) जीवात्मा उपकार प्राप्त करनेवाला है ।

(२९) जीवात्मा अनुगृहित है ।

(३०) जीवात्मा यजमान है ।

(३१) जीवात्मा ध्याता है ।

(३२) जीवात्मा ज्ञाता है ।

(३३) जीवात्मा मन्त्रा है ।

(३४) जीवात्मा निदिध्यासिता है ।

(३५) जीवात्मा कामनाकर्ता है ।

(३६) जीवात्मा जन्य है ।

(३७) जीवात्मा तर्ता है ।

★ ★ ★

परमात्मा एवं जीवात्मा में समानता

(१) **सत्तावान है :** परमात्मा एक सत्तावान् पदार्थ है, कोई कोरी कल्पना नहीं है अपितु वास्तविकता से पूर्ण है, अकाल्पनिक है ।	(१) जीवात्मा भी एक सत्तावान् पदार्थ है । कोई काल्पनिक वस्तु नहीं है । किंतु यह ईश्वर का अंश नहीं है अपितु ईश्वर के समान अपनी स्वतंत्र सत्ता से रहनेवाला है ।
(२) **अजन्मा है :** परमात्मा कभी किसी माता के गर्भ से जन्म नहीं लेता है, किसी से उत्पन्न नहीं होता है ।	(२) जीवात्मा भी अजन्मा है, जीवात्मा का कभी जन्म नहीं होता है, उत्पन्न नहीं होता है, उत्पत्ति तो शरीर की होती है, आत्मा की नहीं ।
(३) **अजर है :** परमात्मा कभी वृद्ध नहीं होता है, सदा जवान रहता है अर्थात् बाल्यावस्था, वृद्धावस्था आदि से सर्वथा रहित है ।	(३) स्वरूप से जीवात्मा भी कभी वृद्ध नहीं होता है बाल्यावस्था, वृद्धावस्था आदि तो शरीर की होती है, आत्मा की नहीं ।
(४) **अमर है :** परमात्मा अविनाशी है अर्थात् ईश्वर कभी मृत्यु को = विनाश को प्राप्त नहीं होता है, अपितु सदा विद्यमान रहनेवाला नित्य पदार्थ है ।	(४) स्वरूप से आत्मा की भी कभी मृत्यु नहीं होती है । यह भी अमर, अविनाशी, सदा रहनेवाला नित्य पदार्थ है ।
(५) **अनादि अनंत है :** काल की दृष्टि से परमात्मा अनादि अनंत है । न कभी इसका आरंभ हुआ है न अंत होनेवाला है ।	(५) जीवात्मा भी काल की दृष्टि से अनादि अनंत है । परमात्मा की तरह जीव सदा से है और सदा रहनेवाला है ।

(६) **निर्विकार है :** परमात्मा कभी वृद्धि–ह्रास, सड़ना–गलना, विकृत होना आदि विकार को प्राप्त नहीं होता है ।	(६) स्वरूप से जीवात्मा में भी किसी प्रकार का वृद्धि–ह्रास या सड़ना–गलना आदि विकार नहीं होता है ।
(७) **चेतन है :** परमात्मा एक ज्ञानवान् चेतन पदार्थ है ।	(७) जीवात्मा भी ज्ञानवान् चेतन पदार्थ है ।
(८) **अदृश्य है : परमात्मा** नेत्रों से कभी भी दिखाई नहीं देता है क्योंकि उसका कोई रूप नहीं है।	(८) जीवात्मा भी अदृश्य है । कभी आँखों से दीखता नहीं है ।
(९) परमात्मा का कोई उपादान अथवा साधारण या निमित्त कारण नहीं है ।	(९) जीवात्मा का भी कोई उपादान कारण अथवा साधारण कारण या निमित्त कारण नहीं है ।
(१०) **निराकार है :** परमात्मा का कोई आकार नहीं है अर्थात् शरीर के समान कोई रूप नहीं है।	(१०) जीवात्मा का भी कोई आकार नहीं है । यह भी ईश्वर समान निराकार है । अर्थात् शरीर के समान किसी भी रूप से रहित है ।
(११) **रंगहीन है :** परमात्मा का कोई रंग नहीं है अर्थात् नीला, पीला, लाल, सफेद आदि रंग उसमें नहीं हैं ।	(११) जीवात्मा भी ईश्वर के समान रंगहीन है ।
(१२) **भारहीन है :** परमात्मा में कोई भार नहीं है।	(१२) जीवात्मा भी भारहीन है ।
(१३) **रुद्र है :** परमात्मा दुष्टों को दंड देकर रुलाने वाला है । अतः वह रुद्र कहलाता है ।	(१३) जीवात्मा भी रुद्र कहलाता है क्योंकि शरीर के त्याग देने पर परिवारजनों को रुलाने वाला है ।

(१४) **निरवय है :** ईश्वर का कोई अवयव नहीं है, हिस्सा, टुकड़ा या अंश नहीं है ।

(१४) जीवात्मा भी अवयव से रहित है ।

(१५) **सक्रिय है :** परमात्मा जीवों को कर्मफल व मोक्ष प्रदान करने हेतु जितने देश व काल में क्रिया करनी उचित समझता है उतने देश व काल में सृष्टि रचना आदि क्रिया करता है।

(१५) जीवात्मा भी सक्रिय है । यह भी जीवन निर्वाह हेतु अनेक प्रकार की क्रिया करता है । तथा मुक्ति में भी ईश्वर की सहायता से सक्रिय रहता है ।

(१६) **पवित्र है :** परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव सर्वथा पवित्र हैं । अतः ईश्वर पूर्ण पवित्र है।

(१६) जीवात्मा भी स्वभाव से पवित्र है तथा परमात्मा की स्तुति प्रार्थना करके परमात्मा के समीप स्थित होने से उसका गुण, कर्म और स्वभाव भी पवित्र हो जाता है ।

(१७) **अलिंग है :** परमात्मा का कोई लिंग नहीं है। अर्थात् वह न तो पुरुष है, न स्त्री है, न नपुंसक है । अतः ईश्वर में शरीर के समान कोई बाह्य लक्षण नहीं है ।

(१७) जीवात्मा का भी कोई लिंग नहीं है । स्वरूप से वह न तो स्त्री है, न पुरुष है, न ही नपुंसक है। शरीर के समान उसका भी कोई बाह्य लक्षण नहीं है ।

★ ★ ★

ईश्वर के सुख और प्रकृति के सुख में भेद

ईश्वर का सुख	प्रकृति का सुख
(१) **सर्वोत्तम है :** ईश्वर का सुख सबसे उत्तम है, सबसे उत्कृष्ट है। जैसा सुख ईश्वर से मिलता है वैसा सुख संसार की किसी भी वस्तु, व्यक्ति, स्थान या विषय से नहीं मिलता है ।	(१) प्रकृति का सुख अनित्य है, क्षणिक है, शीघ्र ही छूट जाने वाला, नष्ट हो जाने वाला है।
(२) **नित्य है :** ईश्वर का सुख शाश्वत है, स्थायी है, लगातार लम्बे समय तक मिलने वाला है।	(२) प्रकृति का सुख तुच्छ है, हीन है, घटिया है। अर्थात् जितना व जिस स्तर का सुख ईश्वर से मिलता है उस प्रकार का सुख प्रकृति से कभी नहीं मिलता है ।
(३) **शांतिदायक है :** ईश्वर का सुख पूर्ण शांति प्रदान करनेवाला है ।	(३) प्रकृति का सुख परिणाम में अशांति उत्पन्न करनेवाला है ।
(४) **तृप्तिकारक है :** ईश्वर का सुख पूर्ण तृप्ति, संतुष्टि को प्रदान करनेवाला है ।	(४) प्रकृति का सुख अतृप्तिकारक है अर्थात् प्राकृतिक पदार्थों से जितना भी सुख भोग लें इससे पूर्ण तृप्ति कभी नहीं मिलती है ।
(५) **अनंत है, अथाह है :** ईश्वर के सुख का कभी अंत नहीं होता है अर्थात् उसकी कोई सीमा नहीं है, ईश्वर से जितना भी सुख प्राप्त कर लें उसके सुख में कोई कमी नहीं होती है ।	(५) प्रकृति का सुख अल्प है = कुछ ही देर में समाप्त हो जाता है ।

(६) **दुःखरहित है :** ईश्वर के सुख में दुःख का लेश मात्र भी नहीं है अर्थात् ईश्वरीय सुख प्राप्त करने पर उसमें दुःख का स्पर्श भी नहीं होता है ।	(६) प्रकृति के सुख में दुःख मिला हुआ है अर्थात् प्राकृतिक पदार्थों से सुख लेने पर परिणामदुःख, तापदुःख, संस्कारदुःख और गुणवृत्ति विरोधदुःख से व्यक्ति संतप्त रहता है ।
(७) **सदा सर्वत्र उपलब्ध है :** ईश्वर का सुख दिन हो या रात हो, सृष्टि हो या प्रलय हो सदैव सभी स्थान में उपलब्ध रहता है ।	(७) प्रकृति का सुख सदा सर्वत्र नहीं मिलता है, अर्थात् सृष्टिकाल में व प्रलयकाल में सदा-सर्वत्र प्राकृतिक सुख किसी भी बद्ध जीवात्मा को नहीं मिलता है ।
(८) **बाह्य साधनों की अपेक्षा नहीं रखता है :** ईश्वर का सुख पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, भोजन-वस्त्र, गाड़ी-बंगला, सोना-चांदी, रूपिया-धन-सम्पत्ति आदि बाह्य साधनों के बिना भी मिलता है अर्थात् ईश्वर के आंतरिक प्रत्यक्ष से मिलता है ।	(८) प्रकृति का सुख बाह्य साधनों की अपेक्षा रखता है अर्थात् बिना बाह्य साधनों जैसे पत्नी-पुत्र, गाड़ी-बंगला, धन-सम्पत्ति, भोजन-वस्त्र, आदि के बिना नहीं मिलता है ।
(९) **स्वस्थ करता है :** ईश्वर का सुख जीवात्मा को अपने आत्म स्वरूप में व परमात्मा के स्वरूप में स्थित करने वाला है ।	(९) प्रकृति का सुख अस्वस्थ करता है । जीवात्मा को अपने स्वरूप और परमात्मा के स्वरूप में स्थित होने से दूर करने वाला है।
(१०) **विवेक वैराग्य समाधि में अबाधक है :** ईश्वर का सुख विवेक, वैराग्य और समाधि में बाधित नहीं है ।	(१०) प्रकृति का सुख विवेक, वैराग्य, समाधि में बाधक है ।

(११) **बुद्धिवर्धक है :** ईश्वर का सुख मन व बुद्धि को पवित्र करते हुए बुद्धि को बढ़ाने वाला है तथा सात्विक बुद्धि को उत्पन्न करने वाला है ।

(१२) ईश्वर का सुख, व्यक्ति को स्वार्थ, झूठ, छल, कपट से ग्रस्त नहीं करता हैं ।

(१३) **भवसागर से पार लगाता है :** ईश्वर का सुख जन्म-मरण के बन्धन को काटते हुए संसार सागर से पार लगाने वाला है।

(१४) **परमात्मा से मित्रता बढ़ाता है :** ईश्वर का सुख परमात्मा से संबन्ध को प्रगाढ़ करता है तथा उससे मित्रता को बढ़ाता है।

(१५) **शुद्ध है :** ईश्वर का सुख सर्वथा शुद्ध है और शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म, शुद्ध उपासना के द्वारा सत्य, धर्म और न्याय के पथ पर चलने से मिलता है ।

(१६) **परिणाम में भी सुखदायी है :** ईश्वर का सुख अंत में भी सुखदायी है, प्रसन्नता व आनन्द का संचार करनेवाला है ।

(११) प्राकृतिक सुख मन व बुद्धि को मलिन करते हुए तमो गुण व रजो गुण से युक्त करते हुए तामसिक व राजसिक बनाने वाला है ।

(१२) प्रकृति का सुख स्वार्थी बनाने वाला है तथा झूठ, छल, कपट, आदि दोषों से ग्रस्त भी कर सकता है ।

(१३) प्रकृति का सुख भवबंधन में बांधने वाला है तथा जन्म मरण के चक्कर में फंसाने वाला है।

(१४) प्रकृति का अविद्यायुक्त भोग ईश्वर से संबंध जोड़ने में बाधा उत्पन्न करता है तथा उससे मित्रता घटाता है ।

(१५) प्राकृतिक सुख ईश्वरीय सुख के समान शुद्ध नहीं है। यह अधर्म, अन्याय के पथ पर चलते हुए भी स्थूलरूप से प्राप्त किया जा सकता है ।

(१६) प्राकृतिक सुख परिणाम में दुःखदायी है = प्राकृतिक सुख, भोगकाल में तो सुखदायी होता है किंतु अंत में दुःखदायी है, तथा अविद्या–अधर्म से भोग करे तो पश्चात्ताप, ग्लानि को भी उत्पन्न कर सकता है ।

(१७) **सदा सबके लिए अभीष्ट है :** ईश्वर का सुख तीनों कालों में सभी विद्वानों, बुद्धिमानों द्वारा वांछनीय है ।	(१७) प्राकृतिक सुख अविद्या (मिथ्याज्ञान) रहने तक अच्छा लगता है किंतु तत्त्वज्ञान होते ही त्याज्य, हेय हो जाता है ।
(१८) ईश्वर के सुख को कोई छीन/चुरा नहीं सकता।	(१८) प्राकृतिक सुख को छीना/चुराया जा सकता है।
(१९) ईश्वरीय सुख के बीच में कोई बाधा नहीं डाल सकता ।	(१९) प्राकृतिक सुख के बीच में कोई भी बाधा डाल सकता है ।
(२०) ईश्वर का सुख एक रस रहता है ।	(२०) प्राकृतिक सुख एकरस नहीं रहता ।
(२१) ईश्वर के सुख में भोगते-भोगते स्तर में न्यूनता नहीं आती ।	(२१) प्राकृतिक सुख के स्तर में न्यूनता आती है ।
(२२) ईश्वर के सुख में भोगते-भोगते ऊब पैदा नहीं होती, अरुचि नहीं होती ।	(२२) प्राकृतिक सुख में भोगते-भोगते ऊब/अरुचि पैदा हो जाती है।

★ ★ ★

मन और जीवात्मा में अन्तर

मन	जीवात्मा
(१) मन जड़ है ।	(१) जीवात्मा चेतन है ।
(२) मन परिवर्तनशील है ।	(२) जीवात्मा अपरिवर्तनशील है ।
(३) मन जीवात्मा का साधन (स्व) है ।	(३) जीवात्मा मन का स्वामी (साधक) है ।

(४) मन विनाशी है ।	(४) जीवात्मा अविनाशी है ।
(५) मन प्रकृति से निर्मित है ।	(५) जीवात्मा प्रकृति से निर्मित नहीं है ।
(६) मन एक संघात पदार्थ है ।	(६) जीवात्मा संघात नहीं है ।
(७) मन की उत्पत्ति में प्रकृति उपादान-कारण और ईश्वर निमित्त-कारण है ।	(७) जीवात्मा का न उपादान-कारण है न कोई निमित्त-कारण है।
(८) मन सीमित काल तक रहनेवाला है ।	(८) जीवात्मा अनंतकाल तक रहने वाला है ।
(९) मन जड़ होने से विषयों को स्वयं नहीं जानता।	(९) जीवात्मा मन के माध्यम से विषयों को जानता है ।
(१०) शुभ-अशुभ कर्मों का फल मन नहीं भोगता है।	(१०) शुभ-अशुभ कर्मों का फल जीवात्मा भोगता है।
(११) मन राग-द्वेष आदि विकारों से ग्रस्त रहता है।	(११) जीवात्मा स्वरूप से अविकारी है ।
(१२) मन प्रकाशशील, गतिशील, स्थैर्यशील स्वभाव-वाला होने से त्रिगुणात्मक है ।	(१२) जीवात्मा स्वरूप से त्रिगुणात्मक नहीं है ।
(१३) मन चित्त की पाँच अवस्थाएँ होती हैं । (१) क्षिप्त (२) मूढ़ (३) विक्षिप्त (४) एकाग्र (५) निरुद्ध।	(१३) जीवात्मा की ये पाँच अवस्थाएँ नहीं होती हैं।
(१४) मन सूक्ष्म है ।	(१४) जीवात्मा सूक्ष्मतर है ।

(१५) मन ज्ञाताज्ञात विषयवाला है ।	(१५) जीवात्मा सदाज्ञात विषयवाला है ।
(१६) मन दर्शन शक्ति है ।	(१६) जीवात्मा द्रष्टा = दृक् शक्ति है ।
(१७) मन इच्छा रहित है ।	(१७) जीवात्मा इच्छा सहित है ।
(१८) मन की मुक्ति नहीं होती है ।	(१८) जीवात्मा की मुक्ति होती है ।
(१९) मन उपकारक उपकारी है ।	(१९) जीवात्मा उपकार्य है ।
(२०) मन अयस्कान्त मणिकल्प है ।	(२०) जीवात्मा अयोसधर्मक है ।
(२१) मन सक्रिय-गतियुक्त है ।	(२१) जीवात्मा निष्क्रिय-गति रहित है ।
(२२) मन कर्म है ।	(२२) जीवात्मा कर्ता है ।
(२३) मन सूक्ष्म शरीर का अवयव है ।	(२३) जीवात्मा सूक्ष्म शरीर का अवयव नहीं है ।
(२४) मन संस्कारों, विवेकख्याति का आश्रय है ।	(२४) जीवात्मा संस्कारों, विवेकख्याति का आश्रय नहीं है ।
(२५) मन उभयात्मक ज्ञानेन्द्रियों-कर्मेन्द्रियों से जुड़ता है।	(२५) जीवात्मा नहीं जुड़ता है ।
(२६) मन परार्थ है ।	(२६) जीवात्मा स्वार्थ है ।
(२७) मन वृत्तियुक्त है ।	(२७) जीवात्मा वृत्ति रहित है ।
(२८) मन अशुद्ध है ।	(२८) जीवात्मा शुद्ध है ।
(२९) मन बंध-मोक्ष का कारण है ।	(२९) जीवात्मा बद्ध-मुक्त होनेवाला है ।

★ ★ ★

वेद में ईश्वर, जीव और प्रकृति

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ ऋ० १/१६४/१०

भावार्थ : ब्रह्म और जीव दोनों चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश, व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त, परस्पर मित्रतायुक्त, सनातन व अनादि हैं। अनादि मूलरूप कारण प्रकृति अर्थात् जो स्थूल होकर पुनः प्रलय में छिन्न-भिन्न हो जाता है, वह तीसरा अनादि पदार्थ है। इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है, वह वृक्षरूप संसार में पापपुण्यरूप फलों को अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा, प्रकृति को न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति परस्पर भिन्न स्वरूप वाले हैं तथा ये तीनों अनादि हैं।

★ ★ ★

उपसंहार

(परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति)

परमात्मा

आज के वैज्ञानिक प्रगति के युग में लोग परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करें या न करें, किंतु समाधि अवस्था में योगीजनों के आंतरिक प्रत्यक्ष से, तथा अनुमानप्रमाण और शब्दप्रमाण से पूर्णतया सिद्ध है कि सृष्टि के प्रत्येक कण में एक अदृश्य सत्ता विद्यमान है जो इसे चला रही है । सभी जीवों के अच्छे बुरे कर्मों को हर क्षण देख रही है तथा सबको कर्मानुसार न्यायपूर्वक कर्मफल प्रदान करती है । इसी अदृश्य सत्ता को हम परमात्मा कहते हैं, जिसका मुख्य निज नाम 'ओ३म्' है । तथापि विद्वान जन उसे ईश्वर आदि अनेक नामों से पुकारते हैं । ईश्वर के स्वरूप के विषय में महर्षि पतंजलि लिखते हैं - **क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।** (योग दर्शन १/२४) अर्थात् अविद्या आदि पाँच क्लेश, शुभ-अशुभ कर्म, मिश्रितकर्म, कर्मों के फल, सुख-दुःख और कर्मफल के भोगों के संस्कार से जो पृथक् है वह पुरुष विशेष 'ईश्वर' है ।

ईश्वर के विषय में फैली भ्रांतियों का निवारण करते हुए यह स्पष्ट किया जा रहा है कि परमात्मा कभी पापों को क्षमा नहीं करता है, न ही बिना कर्मों के किसी को सुख-दुःख देता है । वह जो कुछ चाहे कर सकता है, ऐसा भी नहीं है । वह प्राकृतिक नियमों के विपरीत कोई भी असंभव कार्य नहीं करता है जैसे अग्नि का स्वाभाविक गुण उष्णता है तो ईश्वर उसे शीतल नहीं कर सकता, अपने को मारकर दूसरा ईश्वर उत्पन्न नहीं करता आदि । ईश्वर ही जीवों से सब कुछ काम करवाता है, ऐसा भी नहीं है अर्थात् जैसा ईश्वर चाहे वैसा ही जीवात्मा करता है, यह सिद्धान्त अनुचित है । वस्तुतः परमात्मा ने कर्म करने के लिए जीवों को पूर्ण स्वतंत्रता

प्रदान की है । ईश्वर ने अपने में से यह संसार बनाया है, यह मान्यता भी गलत है क्योंकि जगत् का उपादानकारण तो प्रकृति है, परमात्मा जगत् का निमित्त कारण है = जगत् का निर्माता है । इसी प्रकार परमात्मा (ईश्वर) दुष्टों का संहार करने के लिए इस संसार में शरीर धारण = अवतार लेता है, यह मान्यता भी अज्ञानता-अविद्या का प्रतीक है, सर्वथा मिथ्या है तथा अंधविश्वास है । ईश्वर को शरीरधारी = साकार क्यों नहीं मानें ? ईश्वर को साकार मानने पर क्या दोष आयेंगे ? इसे वेदान्त दर्शन में निम्न सूत्रों द्वारा प्रमाणपूर्वक उद्घाटित किया गया है यथा -

(१) **सम्बन्धानुपपत्तेश्च** । (वेदान्त द० २/२/३८)

सूत्रार्थ - साकार ईश्वर का जीव और प्रकृति के साथ ठीक सम्बन्ध न बन पायेगा ।

(२) **अधिष्ठानानुपत्तेश्च** । (वेदान्त द० /२/२/३८)

सूत्रार्थ - यदि ईश्वर को साकार माने तो वह प्रकृति का अधिष्ठान नहीं बन पायेगा ।

(३) **करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः** । (वेदान्त द० २/२/४०)

सूत्रार्थ - यदि ईश्वर को साकार (आँख, कान, शरीरवाला) मानें तो उसे भोग, संस्कार, बुढ़ापा, दुःखादि से युक्त मानना पड़ेगा ।

(४) **अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा** । (वेदान्त द० २/२/४१)

सूत्रार्थ - शरीरधारी ईश्वर में विनाश = मृत्यु, और एक देशी होने से अल्पज्ञ होने के दोष सिद्ध होंगे।

अतः ईश्वर को शरीरधारी = साकार मानने पर उपरोक्त दोष आने से ईश्वर साकार नहीं हो सकता है।

यद्यपि ईश्वर का कोई स्थूल शरीर नहीं है । तथापि वह अपनी शक्ति से व अनंत सामर्थ्य से असंख्य कर्मों को करता है तथा उसके गुण, कर्म और स्वभाव भी अनंत हैं । इसीलिए परमात्मा के नाम भी असंख्य हैं जिनमें से कुछ नाम नीचे दिये जा रहे हैं -

अ - अरुण, अम्भ, अमः, अग्नि, अर्यमा, अन्तर्यामी, अर्यः, अपलाश = अविनाश, अम्बा, अनंत, अच्युत्, अद्वैत, अशस्तिहा, अद्भुत, अक्षर, अत्ता, अन्न, अज, अनघ, अक्षय, अभय, अटल, अचल, अखंड, अमर्त्य, अथर्वण, अर्यमण ।

आ - आकाश, आपः, आदित्य, आनन्द, आप्त, आराध्य, आसुवानः,

इ - इन्द्र, इष्टदेव, इन्दु = प्रकाशस्वरूप परमात्मन्

ई - ईश्वर, ईश, ईड्यः = स्तुति के योग्य, ईशान

उ - उरुक्रम = अनंतपराक्रमेश्वर, उत्तम, उपास्य, उत्पत्तिकर्ता, उशिक = कामना करने के योग्य, उग्र, उत्कृष्ट, उदपूः ऊर्ध्व, उपष्टुत = स्तुति के योग्य, उक्थ्यः = सर्वोपासना के आधार

ऐ - एकपात, ऐश्वर्यवर्धक

ओ - ओ३म्, ओंकार, ओक्यः = सबका निवास स्थान, ओदन = अन्नरुप ईश्वर, औषधि

औ - औदुम्बरः = संगठन चाहने वाला

अं - अंग = मित्र, अंगिरः = प्राणों से प्रिय,

ऋ - ऋतुवित, ऋजु, ऋत्विज्, ऋषि = अतीन्द्रियार्थ को जाननेवाला, ऋभ्वा

क - कम् = सुखदायक, करुणाकर, कवि, केतु, क्रतुः, कृपासिन्धु , कुबेर, कृपानिधान, कल्याणकारी, क्रतुमान्, काम

ख - खम् = आकाश के समान सर्वत्र व्यापक

ग - गणेश, गणपति, गुरु, गयस्फानः गरुत्मान्, गन्धर्व, गातुवित्, गायत्री, गोविन्द, गोवित्

घ - घृतस्नु = प्रेम को चाहने वाला, घर्म

च - चेतन, चैतन्य, चन्द्रमा, चारु, चित्, चिन्तनीय

छ - छन्दः = समस्त चराचर जगत का आच्छादक

ज - जगन्नाथ, जगदीश, ज्योति, जनक, जगपति, जगबन्धु, जातवेद, जल, जगदाधार, जगवन्दन, ज्योतिरथ

ठ - ठाकुर = समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का स्वामी

त - तृप्त, तेजस्वरूप, तैजस = तेजस्वी लोकों का प्रकाशक, त्वष्टा, तुराषाड् = सब शक्तियों का नियंत्रक

द - दीनदयाकर, देव, दयालु, देवी, दाता, दयासागर, दस्युहा, देवता, दुश्च्यवन, द्रप्स

ध - धाता, धर्मराज, धर्मात्मा, धरुणः = आधार, ध्रुव, धीर, धामधा = सबका आवास स्थल, धर्माधीश

द्यौ - प्रकाशमान (ज्ञानवान्) ईश्वर

न - निराकार, निरंजन, निर्मल, नित्यानंद, नरेश, निरीह, नभ, नाथ नारायण, नित्य, निर्गुण, निर्विकार, नियामक, नियंता, निश्छल, नव्यः = नित्यनवीन

प - परेश, परमेश, परमेश्वर, पुरोहित, पवित्र, पिता, पतितपावन, पवमान, पृथिवी, परिभूः, पुरुषोत्तम, पूषा, पुरुष, परमानन्द, पुत्र, पुरुन्धि = संसार का धारक

प्र - प्रभु, प्रणव, प्रजापति, प्राणदाता, प्रियेश, प्रतक्वा, प्रिय पाञ्चजन्य, प्रवीर

ब - बुध, ब्रह्म, बृहस्पति, बम्भारि, बृहद्भानु, बन्धु, बुद्ध, ब्रध्नम्,

भ - भगवान्, भूमा, भीम, भरत, भूमि, भूतपाल, भूताधिपति, भव, भुक्

म - महादेव, मंगल, मीढ्वः = आनन्दवर्षक, महेश, मनीषी, मघवन्, मरुत, मित्र, मनु, माता, महान्, महात्मा, मृत्युंजय, महिव्रतः, मरुत्वान्, मधु, मतवन्, महाधन, मदिन्तम = आनन्दस्वरूप, मन्यु, माधव, मणि, मधुमान्, मनस्वान्, मधुपु, मृत्यु

य - यम, यज्ञ, यविष्ठ्य = अत्यंत बलवान् (बलवत्तम्) यज्ञान

र - रवि, रुद्र, राजा, राहू = दुष्टों को छोड़ने वाला, रेभः, रोहित

ल - लक्ष्मी = सब शोभाओं की शोभा, लॉर्ड,

व - वरुण, वसु, वायु, विभू, विष्णु, विराट, वैश्वानर, विश्वपति, वसुमत, वाजस्पति, वृषभ, वेदपति, विश्वेश्वर, विश्वम्भर, वृषा, वज्रबाहु, वज्रभृत, विरत्नधा, विश्वावार, विश्वामित्र, विष्टम्भ, विचक्षण = सर्वदृष्टा, वृत्रहा, वयोधा, विश्ववित्, विश्वाधार, विपश्चित् वराह = सर्वश्रेष्ठ तेजवाला

श - शर्मद, शत्रुघ्न, शंकर, शिव, शतनीथ, शतक्रतो, शुक्र, शुष्मी, शुचि, शकुनि = सर्व शक्तिमान्, शिशु, शनैश्चर, शेष, शान्तात्मा, शतकाण्ड

स - सोम, सनातन, सहस्राक्ष, सहस्रपात्, सर्वतोमुख, सरस्वती, समुद्र, सत्पति, सुपर्ण, सविता, सहस्रधार, श्री, सुहृद्, सुमेधा, सुदक्ष, सुमृळीक सुदृशीकः = सुन्दर, सपत्नहा, सहमान

ह - हरि, होता, हिरण्यगर्भ, हियानः = प्रेरक, हिरण्यवत्, हंस, हिरण्य

त्र - त्राता, त्रैकाल्याबाधकेश्वर, त्र्यम्बक, त्रितः

ज्ञ - ज्ञानी, ज्ञेय, ज्ञानप्रद, ज्ञानमय, ज्ञानस्वरूप, ज्ञाता

क्ष - क्षिप्रधन्वा

जीवात्मा

व्यक्ति सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि विशाल पिण्डों को आँख से देखकर इनकी सत्ता को आसानी से स्वीकार करता है तो न्यूट्रोन, प्रोट्रोन, इलेक्ट्रोन आदि सूक्ष्म पदार्थों को बिना आँख से देखे भी अनुमान से स्वीकार करने लगा है। किंतु इस शरीर के अंदर जीवात्मा नामक कोई द्रव्य है उसे आज का भौतिकवादी (वैज्ञानिक) मनुष्य आसानी से स्वीकार नहीं करता है जबकि दार्शनिक प्रमाणों, तर्कों से यह सिद्ध है कि शरीर के अंदर जीवात्मा नामक भी एक वस्तु है, पदार्थ है, जिसके कारण मनुष्य तथा विविध प्रकार के जीव जन्तु देखते-सुनते, खाते-पीते तथा विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ करते हैं।

जीवात्मा शरीर के अंदर रहते हुए भी शरीर-मन-इन्द्रियों से सर्वथा पृथक् है जैसे महर्षि कपिल ने बतलाया है - देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात् (सांख्यदर्शन ६/२) अर्थात् जीवात्मा शरीर, मन, इन्द्रिय से भिन्न है आत्मा के लक्षण भिन्न होने से। यह जीवात्मा अत्यन्त सूक्ष्म अणु परिमाणवाला है। इतना सूक्ष्म होते हुए भी वह हाथी आदि विशालकाय जंतु तथा चींटी आदि क्षुद्र प्राणियों के शरीर को भी चलाता है तथा शरीर के नष्ट हो जाने पर भी स्वयं नष्ट नहीं होता है। अपितु अपने कर्मानुसार पुण्य कर्म अधिक हो तो उत्तम मनुष्य के शरीर को प्राप्त होता है और पाप कर्म अधिक हो तो वही जीव पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि के शरीरों को प्राप्त होता है।

वस्तुतः जीवात्मा के तीन शरीर होते हैं। (१) कारण-शरीर (२) सूक्ष्म-शरीर (३) स्थूल-शरीर। इनमें से (१) कारण-शरीर = प्रकृति है जो सबका समान है, (२) सूक्ष्म-शरीर ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ, ५ तन्मात्राएँ, १ मन, १ अहंकार तथा १ बुद्धि इन १८ तत्त्वों का शरीर सूक्ष्म-शरीर कहलाता है, जो बद्धात्माओं को सृष्टि के आदि में मिलता है और सृष्टिकाल में मुक्ति से लौटी आत्मा को सृष्टि के, मध्य में भी मिलता है। जब तक मुक्ति प्राप्त न हो तब तक या प्रलय होने तक यह कारणशरीर देह देहांतर में आत्मा

के साथ चलता रहता है । (३) स्थूल-शरीर = जो आखों से दिखाई देता है। इन तीनों शरीरों में कारणशरीर सबका एक है किंतु स्थूल व सूक्ष्म शरीर सबके अलग-अलग होते हैं। जीवात्मा इस प्रकार शरीर को प्राप्त करके (शरीर धारण करके) ही सांसारिक सुख-दुःख की अनुभूति कर सकता है, कोई क्रियाकलाप कर सकता है । बिना शरीर धारण किये कोई भी बद्ध जीवात्मा कुछ भी नहीं कर सकता है अर्थात् शरीर के बिना जीवात्मा में, साधनहीन (आँख, कान, हाथ, पैर आदि से रहित) होने के कारण देखना-सुनना आदि नहीं होते हैं । अकाल मृत्यु होने पर मनुष्य की आत्मा भटकती है, प्रतिशोध लेती है, दूसरे मनुष्यों को सताती है आदि मान्यताएँ सर्वथा मिथ्या हैं । वास्तव में जीवात्मा एक शरीर को छोड़ते ही परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार कुछ ही क्षण में अन्य शरीर को प्राप्त करने के लिए किसी माता के गर्भ में प्रविष्ट होता है । एक शरीर को छोड़ने के पश्चात् और दूसरे नये शरीर में प्रवेश होने के पूर्व वह तो मूर्छित स्थिति में रहता है । अर्थात् मृत्यु पश्चात् और नये शरीर की प्राप्ति के पूर्व वह अचेतन अवस्था में ही रहता है । अतः उसका भटकना, अपने शत्रुओं से बदला लेना आदि केवल कल्पना है, वास्तविकता नहीं ।

वास्तव में सभी जीवात्माओं के मूल स्वरूप एवं स्वभाव में कोई भेद नहीं है । इनमें तात्त्विक रूप से न कोई छोटा है, न बड़ा है, न कोई बालक है, न कोई वृद्ध है, अपितु उनमें जो भेद है वह ज्ञान-विज्ञान, संस्कार व कर्म का है । जीवात्माओं की संख्या अनंत है इनकी गणना हम नहीं कर सकते हैं, किन्तु ईश्वर इनकी संख्या जानता है । दर्शन शास्त्र में जीवात्मा के लक्षण का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है कणाद मुनि ने बतलाया है - प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि । (वैशेषिक ३/२/४) अर्थात् श्वास-प्रश्वास का चलना, पलक का बंद करना व खोलना, आहार ग्रहण करने से अंगों का विकास होना, मनन करना, गति होना, इन्द्रियों में आंतरविकार होना । जैसे खट्टी इमली का नाम सुनने मात्र से मुंह में पानी आना, तथा सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष, प्रयत्न का पाया जाना किसी पिंड में आत्मा की सत्ता को सिद्ध करता है। इसी प्रकार महर्षि - गौतम ने बतलाया

है – ''इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिंगम्'' (न्यायदर्शन १-१-१०) अर्थात् इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान जिस वस्तु में हों वहां आत्मा की सिद्धि होती है और यह जीवात्मा चेतनमात्र शुद्ध तत्त्व होता हुआ भी बुद्धि = वृत्तियों के अनुसार देखनेवाला होता है जैसे योग दर्शन में बताया – द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः । (यो० द० २/२०) जीवात्मा को विद्वान्जन अनेक नामों से जानते, मानते, स्वीकारते हैं । उन नामों को नीचे दिया जाता है।

जीवात्मा के पर्यायवाची नाम : जीव, आत्मा, अन्तरात्मा, इन्द्र, उपेन्द्र, हंस, चितिशक्ति, पुरुष, देही, रथी, प्राणी, जन्तु, नारा, भूत, वैश्वानर, पुमान्, वसु, अध्यक्ष, ऋषिकेश, प्रत्यक्ष, ब्रह्म, पुंस, रुद्र, अर्वा, अग्नि, क्रतु, द्रष्टा, गरुत्मान्, गोपा, आदि ।

प्रकृति

आत्मा और परमात्मा के समान प्रकृति भी एक सत्तात्मक द्रव्य है । रस्सी में सांप की भ्रांति के समान अथवा स्वप्न के समान कोई मिथ्या कल्पना नहीं है अपितु यह भी परमात्मा और जीवात्मा के समान अनादि काल से लेकर अनंत काल तक अपनी सत्ता में विद्यमान रहने वाली है । अपने मूल रूप में प्रकृति सत्त्व, रज्, तम् की साम्यावस्था में = प्रलय अवस्था में भी सत्तात्मक रूप से विद्यमान रहने वाली है । इतना अवश्य है कि उस समय जीवात्मा को प्रकृति से कुछ भी लाभ नहीं होता है, न हानि होती है किंतु जब प्रकृति से विकृति = जगत् रूप में यह परमात्मा के द्वारा परिवर्तित की जाती है तभी जीवात्माओं को इससे सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवगार्थं दृश्यम् । (योग दर्शन २/१९) अर्थात् प्रकाश, क्रिया और स्थिति स्वभाववाला, जीवात्मा के भोग और अपवर्ग रूपी प्रयोजन को सिद्ध करने वाला दृश्य = प्रकृति है ।

सबके साध्य = ईश्वर को प्राप्त करने के लिए प्रकृति साधन है जो सभी साधक जीवात्माओं को अपने लक्ष्य–ईश्वर तक पहुंचाने वाली है । किंतु प्रकृति के जड़ होने से उसमें सुख होते हुए भी वह स्वयं अपने सुख का उपभोग नहीं कर सकती है और न कभी

दुःख की अनुभूति करती है अर्थात् प्रकृति की सृष्टि रचना जीवात्मा के लिए है । जैसे ऊँट स्वयं केसर का उपयोग न करते हुए भी उसे ढोता है, इसी प्रकार प्रकृति के स्वयं भोक्ता न होने से प्रकृति भी परार्थ है अर्थात् जीवात्मा के उपभोग के लिए है । जैसे महर्षि कपिल ने इसी बात को निम्न सूत्र के द्वारा बतलाया है - प्रधानसृष्टि परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वा - उष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् (सांख्य ३/५८) इसी प्रकार अन्य उदाहरण से भी इसे समझ सकते हैं । जैसे पलंग स्वयं अपना प्रयोग नहीं कर पाता, उससे लाभ नहीं ले पाता है अपितु उसका प्रयोग उससे भिन्न पुरुष करता है, इसी प्रकार प्रकृति स्वयं अपना लाभ नहीं ले सकती है, पुरुष ही उससे लाभ लेता है, उसके अचेतन, संघात होने से ।

वस्तुतः मूल प्रकृति में कोई रूप वा रंग नहीं है । किंतु जब यह कार्यजगत् में परमात्मा द्वारा परिवर्तित होती है तब विभिन्न रूप-रंग से सुशोभित होती है तथा अपने सत्त्वगुण के माध्यम से सुख उत्पन्न करती है, रजोगुण के माध्यम से दुःख, चंचलता, क्रियाशीलता उत्पन्न करती है, तो तमोगुण के माध्यम से मोह, मूढ़ता, शिथिलता को उत्पन्न करती है ।

★ ★ ★

: योग शिविर के संचालक :

सैकड़ों क्रियात्मक योग प्रशिक्षण शिविरों का देश के विभिन्न प्रांतों में संचालन करना एवं दार्शनिक विद्वानों हेतु उच्च स्तरीय योग शिविर चलाना

: आध्यात्मिक साहित्य सृजन :

योगदर्शन, योग मीमांसा, सरल योग से ईश्वर साक्षात्कार, सत्योपदेश, प्रेरक वाक्य, मेरा संक्षिप्त जीवन चरित्र, बृहतीब्रह्ममेधा

: विदेश यात्रा : ओस्ट्रेलिया, मोरीशियस

: आदित्य ब्रह्मचारी :

२५ वर्षों तक ब्रह्मचर्य के निंयमो का निष्ठापूर्वक पालन करके संन्यास आश्रम में प्रवेश

: शिक्षा : व्याकरणाचार्य, दर्शनाचार्य, वेदवाचस्पति

: संघर्षमय जीवन :

गडरिये से गुरुजी तक की यात्रा करके आर्यसमाज के शीर्षस्थ संन्यासियों में स्थान प्राप्त करना

: मृत्युंजयी संन्यासी :

५-६ साल तक रुग्णशय्या पर रहकर पुनः स्वस्थता की ओर अग्रसर होकर अपनी दिनचर्या स्वयं कर लेना

: साधना स्वाध्यायरत :

२१ वर्ष की आयु से अध्ययन आरंभ करके वर्तमान ८५ वर्ष तक साधना एवम् स्वाध्याय में तत्पर रहना

: पुरस्कार :

५१ लाख से अधिक राशि द्वारा सार्वजनिक अभिनंदन, वरिष्ठ दार्शनिक संन्यासी पुरस्कार, आर्यरत्न पुरस्कार

सफलता निश्चित है

किसी गुण को प्राप्त करने व किसी दोष को छोड़ने में कितनी ही बार व्यक्ति असफल होवे गुण को प्राप्त करने व दोष को छोड़ने का पुरुषार्थ करता रहे, निराश कभी न होवे । निराश हुवे बिना पुरुषार्थ करते रहने में सफलता निश्चित है ।

स्वामी सत्यपति परिव्राजक

मुख्य वितरक

वैदिक संस्थान

दु.नं. ५, प्रथम मंजिल, आदर्श काम्पलेक्स, मुरलीधर सोसायटी के सामने,
ओढव, अहमदाबाद-३८२ ४१५. दूरभाष : (०७९) २२९७२३४०